International Journal of Advance and Applied Research
www.ijaar.co.in
ISSN – 2347-7075 Impact Factor – 7.328
Peer Reviewed Bi-Monthly
Vol. 11 No. 5 May-June 2024

ललित निबंध संदर्भित वैवाहिक लोकाचारों की विविधता का अध्ययन

डॉ. गजेन्द्र भारद्वाज

सहायक प्राचार्य हिंदी, मारवाड़ी महाविद्यालय दरभंगा, बिहार

Corresponding Author - डॉ. गजेन्द्र भारद्वाज

Email: drgajendrabhardwajhindi@gmail.com

DOI- 10.5281/zenodo.12754340

सारांश:

भारतीय संस्कृति के आश्रम चतुष्टय में गृहस्थाश्रम के महत्त्व को इसी बात से आकलित किया जा सकता है कि विवाह को सोलह संस्कारों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते हुए अधिकांश संस्कार विवाह के उपरांत ही संपन्न किए जाते हैं। अन्य सभ्यताओं की तरह भारतीय समाज में विवाह केवल भौतिक अथवा सभ्यतागत अर्थ नहीं रखता, बल्कि भारतीय लोकमानस के अनुसार विवाह दो परिवारों, दो समाजों, दो समुदायों और दो आत्माओं का ऐसा मिलन माना जाता है जो न केवल वर्त्तमान जीवन को अपनी परिधि में शामिल कर लेता है अपितु समूचा भावी जीवन इसके विस्तार क्षेत्र में सम्मिलित हो जाता है। वैदिक साहित्य में तो विवाह के लिए जन्म-जन्मांतर के साथ की अवधारणाएँ प्रस्तुत की गई हैं। अनेकता में एकता का उद्घोषक भारतीय समाज अपनी विविधता के लिए जितना प्रसिद्ध है उतना ही सांस्कृतिक विविधता के लिए। जिसके कारण भारत में विवाह संबंधी लोकाचारों में भी पर्याप्त विभिन्नता मिलती है। कई समुदाय ऐसे हैं जहाँ विवाह की कई पद्धतियाँ, रूप और प्रकार प्रचलित हैं। इन पद्धतियों में से कुछ के विविधतामूलक संदर्भ हिंदी के ललित-निबंध साहित्य में लोकमानस की प्रचलित परंपराओं के साथ उपस्थित हुए हैं। प्रस्तुत शोधपत्र ललित-निबंध संदर्भित ऐसे ही वैवाहिक लोकाचारों की विविधता के अध्ययन पर केन्द्रित है।

बीज शब्द- मुहूर्त, नेगगीत, बधायेगीत, रस्म, विदाई, लोकाचार, लोक-संस्कृति।

प्रस्तावना एवं उद्देश्य:

अभिजात्य कहे जाने वाले समुदाय द्वारा विविधता और व्यापकता वाले उन समुदायों को 'लोक' कहा गया जिनके समाज में कई लोक परंपराएँ, रीति-रिवाज और प्रथाएँ प्रचलित थीं और 'लोक' की संस्कृति को 'लोक-संस्कृति' का नाम दिया गया। इस प्रकार वत्तर्मान समाज में संस्कृति के अभिजात्य और लोक संस्कृति के नाम से दो रूप प्रचलित हो गए। एक वह जिसमें वैदिक विधि-विधान, परंपराएँ तथा कर्मकाण्ड आदि समाहित थे तथा दूसरी वह, जिसमें लोकानुभूति तथा अनुभवों पर आधारित परंपराओं, प्रथाओं आदि को मान्यता दी गई है, इसे लोक-संस्कृति माना गया। आज का समाज भले ही विज्ञान, तकनीकी आदि के आधार पर उत्तर आधुनिकता की ओर द्रुत गति से बढ़ रहा है पर फिर भी देश-दुनिया की अधिकांश आबादी लोक-संस्कृति के साये में ही अपना जीवनयापन कर रही है और इसी के साथ अपना सवेरा और अपनी शाम भी करती है। अस्तु यह कहा जा सकता है कि लोक-संस्कृति की जड़ें हममें इतने गहरे तक पैठ किये हुए है कि उनसे अछूता नहीं रहा जा सकता। इस लोक-संस्कृति के लोकव्यवहार या लोकाचार पक्ष की कई परंपराएँ हैं जो हिंदी के ललित-निबंध साहित्य में संदर्भित हुई हैं। इस शोधपत्र में इन्हीं संदर्भित लोक परंपराओं संबंध लोक-व्यवहारों के आकलन का प्रयास किया गया है।

विस्तार एवं सीमाएँ:

भारत में विभिन्न धर्म एवं संप्रदाय को मानने वाले लोग निवास करते आए हैं, जिनमें मातृसत्तात्मक और पितृसत्तात्मक दोनों ही प्रकार की सामाजिक व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं। इन समाजों में विवाह की कई पद्धतियाँ अस्तित्व में रहती आई हैं, जिनका गद्य और पद्य साहित्य की कई विधाओं में वर्णन मिलता है। प्रस्तुत शोधपत्र का विस्तार इन दोनों की प्रकार के समाजों में प्रचलित विवाह पद्धतियों तक और सीमाएँ गद्य साहित्य की ललित-निबंध विधा तक है, जिसमें विवाह संबंधी लोकाचारों के संदर्भ परिलक्षित होते हैं।

उपलब्ध साहित्य:

ललित-निबंध संग्रह 'तमाल के झरोखे से', 'छितवन की छाँह'(विद्यानिवास मिश्र), 'दसंकधर का अट्टहास'(डॉ राहुल मिश्र), 'ठिठके पंख पाँखुरी पर](डॉ. श्रीराम परिहार), 'कथाओं की अंतर कथाएँ'(पं.रामनारायण उपाध्याय), पत्रिकाएँ 'नूतनवाग्धारा', 'समीचीन', 'चौमासा', 'रिसर्च डिस्कोर्स', समीक्षात्मक ग्रंथ 'रीति लोकाचार और मान्यता'(रमेश दत्त दुबे), 'ललित निबंधों का सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक अध्ययन'(डॉ. श्रीरंग पांडुरंग बट्टमवार) आदि।

शोध प्रविधि- प्रस्तुत शोधपत्र लेखन हेतु तथ्याख्यानपरक विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

परिणाम एवं विमर्श:

जिस लोक-संस्कृति को सर विलियम टाम्स ने सन् 1846 ईस्वी में 'फोकलोर' शब्द कहा था, वह भारत में कभी ग्राम्य-संस्कृति के नाम से जानी जाती रही है तो कभी लोकवार्ता के नाम से। पर इसके लिए 'लोक-संस्कृति' शब्द आज एक सर्वमान्य शब्द के रूप में उभरकर सामने आया है। लोक-संस्कृति के लिए विद्वानों द्वारा यह स्वीकार किया जाता रहा है कि यही हमारी मूल-संस्कृति है जो हमारे समाज की रीढ़ है। समय-समय पर लोक-संस्कृति संबंधी अवधारणाओं में विस्तार और संकुचन की प्रवृत्ति देखने को मिलती रही है। जिसका प्रभाव इससे संबंधित लोक-विश्वासों, परंपराओं, लोक-रीतियों तथा लोक-साहित्य पर भी परिलक्षित होता आया है। कदाचित् इसलिए विद्वानों ने कहा है कि ''भारतीय संस्कृति का मूल आधार लोक-संस्कृति ही रही है लोक-संस्कृति के कारण ही संस्कृति जिंदा है। लोक-संस्कृति लोकमानस की आधारभूमि पर प्रतिष्ठित है और यह लोकमानस किसी जातीय विशिष्टताओं से युक्त होकर धार्मिक, भौगोलिक तथा ऐतिहासिक तत्वों के साथ अभिजात समाज में अपनी परंपरागत प्रथा एवं विश्वास के रूप में प्रतिनिधित्व करते हुए आज भी आदिम, अविकसित मनुष्यों के समुदाय में सजीव रूप से विद्यमान है। जातीय विशिष्टताओं से तात्पर्य लोक समुदाय के जीवन एवं चिंतन प्रणाली के विविध रूपों से है। जैसे- रीति-रिवाज, धार्मिक संस्कार, उत्सव, त्यौहार, जादू-मंत्र, आचार-विचार, प्रथाएँ तथा अंधविश्वास आदि। इस प्रकार लोक-संस्कृति किसी अँचल विशेष के जनजीवन का दर्पण है।''[1]

इस संबंध में लोक-संस्कृति के अध्येताओं द्वारा महत्वपूर्ण शोध किए गए हैं जिनमें लोक-संस्कृति के विभिन्न तत्वों की व्याख्या करते हुए उसमें लोकदेवता, लोकगाथा, लोककथा, लोकविश्वास, लोकपर्व, लोकगीत, लोकसंगीत, लोकवाद्य, लोकनृत्य, लोकनाट्य, लोककला, लोकपरिधान, लोकपकवान, लोकव्यवहार, लोकसुभाषित, लोकरंजन, लोकचिकित्सा, लोकधर्म आदि अंगों को समाहित करते हुए लोक-संस्कृति के स्वरूप को निर्धारित करने के वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत किए हैं। लोक-संस्कृति व्यवहारिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होने वाली प्रक्रिया है जिसके विधि-निषेधों की जानकारी परिवार और समाज के ज्येष्ठों और बुजुर्गों के अनुभवों तक पहुँचती है। लोक-संस्कृति के अध्येताओं ने समाज के विभिन्न समुदायों और वर्गों द्वारा पालन की जाने वाली लोक-संस्कृति का लोक साहित्य में चित्रण तो किया ही है, समाज में फैली अंधविश्वास संबंधी कुरीतियों को समाप्त करने में जनसंचार के विभिन्न माध्यमों से अपने साहित्य लेखन से योगदान भी दिया है।

दरअसल लोक-व्यवहार में कई विधि निषेध होते है जिनके करने या न करने संबंधी नियमों की जानकारी कहीं लिखित रूप में उपलब्ध नहीं होती बल्कि परिवार ओर समाज के बड़े-बुजुर्गों के माध्यम से इनकी जानकारी प्राप्त होती है। जैसे- विवाह के अवसर पर कन्या के मामा-मामी के द्वारा वर पक्ष को टीके आदि की रस्म निभाई जाती है जिसका सहारा लेकर समाज में दहेज रूपी बुराई पनपती गई। एक अन्य लोकव्यवहार में मृत्यु या अंत्येष्टि के उपरांत किए जाने वाले क्रियाकलापों के उपरांत दसवें या तेरहवें दिन सामूहिक भोजनादि की प्रथा भी आर्थिक रूप से तंगहाल परिवार के लिए एक कठिन परिस्थिति उत्पन्न कर देती है। किसी बच्चे के मामा के द्वारा उम्र में छोटे या बड़े भांजे के पैर छूना आदि ऐसे लोकाचार हैं जो हमारे समाज में सदियों से चले आ रहे हैं पर कई बार इनसे कई अंधविश्वास जुड़ते चले जाते हैं। इन अंधविश्वासों के पीछे छिपे कारणों के समाप्त या विस्मृत हो जाने पर भी बुजुर्गों के कहे अनुसार निरंतर उनका पालन किया जा रहा है। श्री रमेश दत्त दुबे जी ने लोक-संस्कृति संबंधी इन लोकाचारों को वर्गीकृत करते हुए उसके 5 वर्ग बनाए हैं- 1.सामाजिक लोकाचार, 2.पारिवारिक लोकाचार, 3.सांस्कृतिक लोकाचार, 4.धार्मिक लोकाचार, 5.कृषि व्यवहार संबंधी लोकाचार।''[2] ये लोक-व्यवहार केवल समाज या परिवार पर ही आरोपित नहीं होते बल्कि अपने चारों ओर के वातावरण तथा प्रकृति को भी प्रभावित करते हैं। जैसे- वृक्षों, पशुओं, अनाजों आदि के संरक्षण तथा संवर्द्धन से जुड़े कई लोकाचार आँवलानवमीं, हरितालिका तीज, महाशिवरात्रि, नागपंचमी, गोवर्द्धन पूजा आदि से जुड़े हुए हैं। ये लोकाचार प्रकृति और मनुष्यता के पारस्परिक संबंधों की निर्भरता भी बताते हैं। जीवों और पशुओं से भी हमने अनेक लोकाचार सीखे हैं जिनका पालन हम आज तक करते चले आ रहे हैं। इन लोक-व्यवहारों की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि ''लोकाचार में नैतिकता का आग्रह होता है। नैतिकता का पथ धर्म की ओर जाता है। व्यक्ति किसी अंश तक धर्म पालन में विमुख हो सकता है किंतु लोकाचार का परिपालन अनिवार्य है। इस अर्थ में लोकाचार धर्म से उच्चतर भूमिका में प्रतिष्ठित होता है। लोकाचार समाज से उत्पन्न होता है और समाज में ही घटित होता है। लोकाचार की अनेक भूमिकाएँ हैं। लोकोक्तियाँ, पहेलियाँ और सुभाषित लोकाचार की कोख से उपजते हैं। मिथक और किवदंतियाँ लोकाचार की देन हैं। प्रथाओं और परंपराओं में लोकाचार उजागर होता है। लोकाचार लोकजीवन का पाथेय है।''[3]

जब ये लोकव्यवहार कुछ नियमों में बंधकर समाज को निर्देशित करने लगते हैं तब वह लोकधर्म का रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार लोक-व्यवहार में धर्म की जड़ें धँसी हुई होती हैं। यह हमारे चारों ओर एक ऐसे परिवेश का निर्माण करता है जो अपने आसपास के परिवेश से प्रभावित होता भी है और आसपास के परिवेश को प्रभावित भी करता है। फिर चाहे वह प्राकृतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक परिवेश हो या राजनैतिक परिवेश। हमारा देश कृषि प्रधान और सनातन संस्कृति वाला देश है जिसके कारण यहाँ का

सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश व्यक्ति को हमेशा गहरे तक प्रभावित करता है। ग्रामीण तथा शहरी दोनों क्षेत्रों से जुड़ा व्यक्ति लोक-सांस्कृतिक परिवेश में रिश्तों-नातों, लोकाचार, व्यवहार आदि के साथ इस तरह गुंफित रहता है कि वह अपनी लोक-संस्कृति के सागर की ओर बहता चला जाता है। जैसे विवाह एक शास्त्रीय संस्कार ही नहीं महत्वपूर्ण लोकाचार भी है जिसकी तैयारियों की प्रक्रिया लगभग एक सप्ताह पूर्व से प्रारंभ हो जाती हैं इससे संबंधित लोकव्यवहार का उल्लेख करते हुए पं. रामनारायण उपाध्याय लिखते हैं कि- ''विवाह का प्रारंभ 5 मुहूर्त से होता है। इस कार्य को संपादित करने के लिए परिवार की बहू-बेटियाँ पहले आ जाती हैं। उनका आरती से कुमकुम लगाकर स्वागत किया जाता है। फिर आँगन में कलश रख एक पत्ते पर गणेश जी को बैठाकर उनकी पूजा की जाती है। उसके बाद गोलाकार महिलाएँ बैठकर गीत की कड़ियों के साथ, कोई सूपड़े से गेहूँ साफ करती हैं। तो कोई ऊक्खल-मूसल से धान कूटती हैं। कोई खलबत्ते से मसाला तैयार करती है, तो कोई छन्नी से आटा छानती हैं। इसके बाद स्त्रियाँ गाती हुई गाँव से बाहर जाकर धरती की पूजा करती हैं और नई छोटी टोकनियों में मिट्टी लाती हैं। इस मिट्टी से चूल्हे और कोठी बनाए जाते हैं। इसे 'चूल्हा-कोठी मुहूर्त' कहते हैं।''[4]

विवाह संबंधी इसी लोकव्यवहार में महिलाओं के द्वारा विभिन्न लोक-मांगलिक कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं जिनमें माँगरमाटी, हल्दी, मातृका पूजन आदि शामिल हैं इन सभी मांगलिक कार्यक्रमों में भावी दुलहा और दुलहिन संबंधी लोकाचारों के साथ उनसे संबंधित लोकगीत जैसे मंगलगीत, नेगगीत और गारी आदि से संबंधित लोकगीत भी गाए जाते हैं। इन लोकगीतों के साथ चलने वाली परपंराओं का वर्णन करते हुए पं. विद्यानिवास मिश्र लिखते हैं- ''विवाह के पाँच दिन पूर्व ऐसी दिन भर चावल-दाल फटकते-बीनते, हल्दी पीसते और पियरी रँगते जब गृह-नारी थक जाती है, तब गोधूलि आते ही, आँगन लीप-पोतकर, नहा-धोकर और एकदम सुस्थिर होकर वह पाँत बाँधकर बैठ जाती है। उस समय समाधिस्थ तन्मयता के साथ वह संझा का आह्वान करने जब बैठती है तो उसको उस क्षण में देखना उसकी आराधना को देखना है। इन गीतियों में मैं उनका पलायन नहीं पाता, मुझे तो लगता है कि गृहस्थ जीवन के लिए इन्हीं गीतियों में वे प्रेरणा का संचय करती हैं।''[5]

विवाह के संबंध में बुंदेली लोकव्यवहार है कि शादी-विवाह में पहला निमंत्रण लोकदेवता कुँवर हरदौल को दिया जाता है। इसमें जब हरदौल लाला के चबूतरे में जाकर बताशे और बीड़ा अर्पित किया जाता है फिर कहीं शादी वाले घर में भोजन बनना शुरु किया जाता है। भोजन निर्माण के दौरान घर की सभी महिलाएँ हरदौल लाला के लोकगीत गाते हुए प्रार्थना करती हैं और नवविवाहिता जोड़ा अपने घर में प्रवेश से पूर्व कुँवर हरदौल के चबूतरे पर आशीर्वाद लेने भी जाते हैं। इस संबंध में डॉ. राहलु मिश्र 'बुंदेला देसा के हो लाला प्यारे भले हैं..., नामक ललित निबंध में लिखते हैं कि- ''कुँवर हरदौल को सभी कन्याओं में मामा की प्रतिष्ठा मिली है। कुँवारी कन्याओं के भात की रस्म भी हरदौल चबूतरे पर ही पूरी कराई जाती है। ओरछा दतिया क्षेत्र में तो शादी-विवाह का निमंत्रण सबसे पहले हरदौल-जू को ही दिया जाता है। महिलाएँ हरदौल-जू को अपने प्यारे भाई के रूप में प्रतिष्ठा देते हुए भात न्यौतने की रस्म में बड़ी भाव-विह्वलता के साथ गाती हैं-

'नेउते आयो हो रे बीरन तुम या काज बनायो,
कुंजा ब्याह रचे बिटिया का,
नेउता दीन्ह भइयन को तोहके पाती पढ़े दई भौजी के,
पातिन नाँव लिखे सबही के तुम्ह बिन काम सधै ना एकौ,
खबर भूल ना जायो।''[6]

इस लोकव्यवहार के पीछे की लोककथा को बताते हुए डॉ. राहुल मिश्र लिखते हैं कि- ''दतिया राजघराने में ब्याही कुँवर हरदौल की बहन कुंजन(कुंजावत) अपनी बेटी के ब्याह के लिए बुंदेलखंड परंपराओं के अनुसार भात न्यौतने ओरछा आई। रानी चंपावत के हृदय में धधक रही वेदना की ज्वाला कुंजन के समक्ष फूट पड़ी। सारी बात जानकर कुंजन अपने छोटे भाई के हत्यारे जुझार सिंह को बिना न्यौता दिए हरदौल की पगड़ी और तलवार लेकर वापस लौट पड़ी। किवंदती है कि दुःखी होकर लौटती कुंजन को हरदौल की आवाज सुनाई दी और हरदौल ने न्योते में आने को भी कहा। दूसरी जनश्रुति के आधार पर यह भी बताना होगा कि कुंजन की बेटी के विवाह के अवसर पर मण्डप के नीचे जेवनार की रस्म में दूल्हे के जिद करने पर भान्जी और भान्जे दामाद का मन रखने के लिए कुँवर हरदौल की छाया के रूप में उनका हाथ दिखाई दिया था। इस जनश्रुति को लोकगीत के सांचे में ढालकर महिलाएँ बड़े भावातिरेक में गाती हैं।''[7] इसी प्रकार कुँवारी कन्याओं के हाथों से हरदौल को भात देने की रस्म भी लोकाचार में प्रचलित है। जिसका चित्रण करते हुए डॉ. राहुल मिश्र लिखते हैं कि- ''कुँवर हरदौल को सभी कन्याओं में मामा की प्रतिष्ठा मिली है। कुँवारी कन्याओं के भात की रस्म भी हरदौल चबूतरे पर ही पूरी कराई जाती है। ओरछा दतिया क्षेत्र में तो शादी-विवाह का निमंत्रण सबसे पहले हरदौल-जू को ही दिया जाता है। महिलाएँ हरदौल-जू को अपने प्यारे भाई के रूप में प्रतिष्ठा देते हुए भात न्यौतने की रस्म में बड़ी भाव-विह्वलता के साथ गाती हैं-

'नेउते आयो हो रे बीरन तुम या काज बनायो,
कुंजा ब्याह रचे बिटिया का,
नेउता दीन्ह भइयन को तोहके पाती पढ़े दई भौजी के,
पातिन नाँव लिखे सबही के तुम्ह बिन काम सधै ना एकौ,
खबर भूल ना जायो।'[8]

केवल महिलाएँ ही नहीं बुंदेलखण्ड के पुरुष भी हरदौल के प्रति उतने ही अगाध श्रद्धा भाव से उनसे अपने

विवाहित जीवन में आचरण की शुचिता और मर्यादित जीवन का आशीर्वाद लेने जाते हैं बुंदेलखण्ड में ऐसे ही न जाने कितने लोकाचार हैं जिनके कारण आज भी समाज में भाई-चारा सद्भाव और परंपराएँ समाज की प्रगति के साथ-साथ नयी पीढ़ी को मार्गदर्शन देती आ रही हैं। डॉ. राहुल मिश्र लिखते हैं कि- ''नवविवाहिता को ससुराल में प्रवेश से पूर्व हरदौल चबूतरे पर ले जाने का भी रिवाज है, जिससे नवविवाहिता हरदौल के मर्यादित जीवन से सीख लेकर, अपने परिवार सहित समाज व देश की मर्यादा की रक्षा कर सके और अपने जीवन को भी मर्यादित रख सके।''9 निमाड़ी लोक-संस्कृति और लोक-साहित्य के अग्रदूत पं. रामनारायण उपाध्याय जी ने अपने ग्रंथ में लोक-व्यवहार के विविध पक्षों को लोकदेवता, लोकगाथा, लोककथा, लोकविश्वास, लोकपर्व, लोकगीत, लोकभाषा आदि के साथ व्यापक रूप से संदर्भित किया है। इके विविध पक्षों जैसे कहावतों, लोकोक्तियों आदि का उल्लेख करते हुए निमाड़ी लोक-संस्कृति के विविध पक्षों को प्रकाश में लाया गया है। उनके उत्तराधिकारी डॉ. श्रीराम परिहार ने भी निमाड़ी लोक-संस्कृति संबंधी कई उपादान दिए हैं। वे विवाह संबंधी उदाहरण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि शादी के बाद नीम की छाया और माता-पिता छूट जाते हैं और बेटी को ससुराल जाना ही पड़ता है। विवाह योग्य युवती की मनोदशा का चित्रण निमाड़ी लोकगीत के माध्यम से करते हुए डॉ. परिहार लिखते हैं कि-

''आखा नीमड़ी री छाया,
जसी मात-पिता री माया,
माया तोड़नू पड़से,
सासरा जावणू पड़से।''10

इसी प्रकार पंडित विद्यानिवास मिश्र विवाह संबंधी एक उदाहरण 'काहे बिन सून अँगनवा' में प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि ''लोकव्यवहार में विवाह से संबंधित एक और रस्म है चुमावन की।.....मेरे मन में यह याद अब भी ताजा है जब मैं दूर्वाक्षतों से सौ बार चुमा गया था, 30-35 कुल की कन्याओं की सेना मस्तक से लेकर जानु तक अपनी अंगुलियों से दूब-अक्षत लेकर वय, शक्ति और उमंग के अनुरूप बल लगाकर एक के बाद एक दबाती जा रही थी। इसी व्यापार को चूमने की संज्ञा देकर गीत उच्चरित हो रहे थे।''11 विवाह से संबंधित एक अन्य लोकाचार का उल्लेख करते हुए पं. विद्यानिवास मिश्र कहते हैं कि- ''हमारे क्षेत्र में जब वर विवाह करने चलता है तो अपने घर से निकलता है गाँव के देवी-देवताओं की परिक्रमा करता है, अंत में माँ से विदा लेता है और उससे कहा जाता है कि एक बार दूध पियो। दूध पीने की केवल रस्म अदा की जाती है और एक गीत गाया जाता है-

'जात है पूत तू त गौरी वियाहन गौरी वियाहन
दुधवा के मोल दइ आउ
मइया के दुधवा त हटिया बिकाला त बटिया बिकाला
माई के दूध अनमोल।'

अर्थात् पुत्र तुम गौरी-सी सुलक्षण कन्या ब्याहने जा रहे हो, दूध का मोल चुकाते जाओ। माँ, गाय का दूध हाट में बिकता है, बाट में बिकता है, माँ के दूध का कोई मूल्य चुकता नहीं कर सकता है। जन्म-जन्मांतर में भी कोई इसका ऋण नहीं भर सकता है। मैंने इस गीत की गूँज मन में सुनी और मेरी आँखें छलछला उठीं।''12 पंडित रामनारायण उपाध्याय ने अपने ललित-निबंधों के माध्यम से मातृसत्तात्मक आदिवासी समुदायों के साथ-साथ निमाड़ के लोकजीवन में प्रचलित विवाह संबंधी लोकचारों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। ललित-निबंधकार डॉ. श्यामसुंदर दुबे एवं डॉ. श्रीराम परिहार एवं डॉ. नर्मदा प्रसाद सिसोदिया द्वारा भी विवाह के पूर्व एवं विवाह के उपरांत नवदंपति एवं उनके परिवार के अन्य निभायी जाने वाली लोकपरंपराओं पर प्रकाश डाला है। डॉ. मालती शर्मा ने महाराष्ट्र, एवं ब्रज क्षेत्र में प्रचलित उन परंपराओं के संदर्भ प्रस्तुत किए हैं जो वर एवं वधू के द्वारा पालन किए जाते हैं। डॉ. संतराम देशवाल ने घुड़चढ़ी से लेकर विदाई तक प्रचलित संस्कारगीत, बधाये गीत,नेगगीत आदि के माध्यम से उन परंपराओं का उल्लेख किया है जो हरियाणवी लोक-संस्कृति में प्रचलित हैं। पंडित विद्यानिवास मिश्र, डॉ. विवेकीराय, डॉ. कुबेरनाथ राय, डॉ. जयप्रकाश मानस आदि ने भी भोजपुरी, असममिया, अवधी आदि लोक-संस्कृतियों में प्रचलित विवाह पद्धतियों, संस्कारों एवं लोक व्यवहारों का विभिन्न लोकगीतों, लोकविश्वासों, लोककथाओं के विभिन्न संदर्भ प्रस्तुत किए हैं।

उपसंहार एवं अनुशंसा:

लोकव्यवहार मुख्य रूप से लोक या लोगों के रहन-सहन, खानपान, आचार-विचार आदि से संबंधित दैनिक जीवन के अथवा विशेष अवसरों के पारस्परिक व्यवहार आदि से संबंधित होते हैं। इसमें पूजा-अर्चना जन्म-मृत्यु, नामकरण-विवाह, पर्व-उत्साह आदि के रीति-रिवाज तथा सामाजिक-व्यापार को शामिल किया जा सकता है। विवाहादि ऐसे ही संस्कार हैं जिनके माध्यम से न केवल समाज के सदस्य और परिवारजन आपस मिलते-जुलते हैं बल्कि दो भिन्न समाज, संस्कृति तथा धर्मों एक-दूसरे से मिलन कर पाते हैं। इसी मिलन से अनेकता में एकता का बीजारोपण होता है और लोकव्यवहार का व्यापक धरातल पर विस्तार पाता जाता है। जिसे बनाए रखने के लिए महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा आग्रह किया गया है कि प्रत्येक परिवार में कम से कम एक सदस्य ऐसा होना चाहिए जिसका विवाह उस परिवार या समाज से इतर अन्य समाज या अन्य समुदाय में किया जाए। विविधतामूलक समाज की जीवंतता के लिए उन्होंने इसे अनिवार्य बताया है। विवाह

संस्कार की परिधि लोकधर्म तक भी पहुँचती है। लोकधर्म संबंधी इन्हीं व्यवहारों या लोकाचारों का उल्लेख हिंदी के ललित निबंध साहित्य में स्थानीय विविधता के साथ मिलता है। पंडित रामनारायण उपाध्याय एवं डॉ. श्रीराम परिहार के ललित निबंधों में निमाड़ी क्षेत्र के विवाह संबंधी लोकाचारों के विविध संदर्भ मिलते हैं जिनमें परिवारजनों और नव-दंपति संबंधी अनेक संस्कारों का उल्लेख किया गया है। पंडित विद्यानिवास मिश्र ने भोजपुरी लोक-संस्कृति से प्रभावित विवाह संबंधी लोकाचारों में विवाह के पूर्व की तैयारियों एवं लोकगीतों में वर-वधू को दिए जाने वाले आशीष संबंधी संदर्भों का चित्रण किया है। इसी प्रकार डॉ. श्यामसुदर दुबे, डॉ. नर्मदा प्रसाद सिसोदिया ने बुंदेली, डॉ. मालती शर्मा ने मराठी और ब्रज, डॉ. संतराम देशवाल ने हरियाणवी लोक-संस्कृति के प्रभाव में विवाह संबंधी अनेक लोकाचारों एवं संस्कारों का लोकगीतों नेगगीत, लाड़ो-गीत, घुड़चढ़ी-गीत, कसीदागीत, चरखागीत, सरातियागीत, धूपिया गीत आदि के माध्यम से वर्णन किया है।

संदर्भ:

1. बट्टमवार, श्रीरंग पांडुरंग, 'ललित निबंधों का सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक अध्ययन', समता प्रकाशन कानपुर, प्रथम संस्करण, 2010, पृ.-148
2. दुबे, श्री रमेश दत्त, 'रीति लोकाचार और मान्यता', 'चौमासा', संपादक- डॉ. कपिल तिवारी, आदिवासी लोककला अकादमी, भोपाल, जुलाई-अक्टूबर, 2004, पृ.-14-15
3. विकल, गोमती प्रसाद, 'रीति लोकाचार और मान्यता', 'चौमासा' संपादक- डॉ. कपिल तिवारी, आदिवासी लोककला अकादमी, भोपाल, जुलाई-अक्टूबर, 2004, पृ.-6
4. उपाध्याय, पं. रामनारायण, 'कथाओं की अंतर कथाएँ', प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 1993, पृ.-62-63
5. मिश्र, पं. विद्यानिवास, 'छितवन की छाँह', लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, 2003, पृ.-114
6. मिश्र, डॉ राहुल, 'दसंकधर का अट्टहास', नवीन प्रकाशन शहादरा, नई दिल्ली, 2012, पृ.-50-51
7. मिश्र, डॉ राहुल, 'दसंकधर का अट्टहास', नवीन प्रकाशन शहादरा, नई दिल्ली, 2012, पृ.-49-50
8. मिश्र, डॉ राहुल, 'दसंकधर का अट्टहास', नवीन प्रकाशन शहादरा, नई दिल्ली, 2012, पृ.-50-51
9. मिश्र, डॉ राहुल, 'दसंकधर का अट्टहास', नवीन प्रकाशन शहादरा, नई दिल्ली, 2012, पृ.-52
10. परिहार, श्रीराम, 'ठिठके पंख पाँखुरी पर', पड़ाव प्रकाशन, भोपाल, संस्करण- 2000, पृ.-28
11. मिश्र, पं. विद्यानिवास, 'तमाल के झरोखे से', राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1989, पृ.-38
12. मिश्र, पं. विद्यानिवास, 'तमाल के झरोखे से', राधाकृष्ण प्रकाशन, 1989, दिल्ली, पृ.-28